सम्यग् दर्शन

श्री रामेश्वरदासजी बिड़ला स्मारक कोष
द्वारा आयोजित
द्वितीय स्मारक भाषण

दादा धर्माधिकारी

बिड़ला मातुश्री सभागार
२० दिसंबर १९८०
बंबई

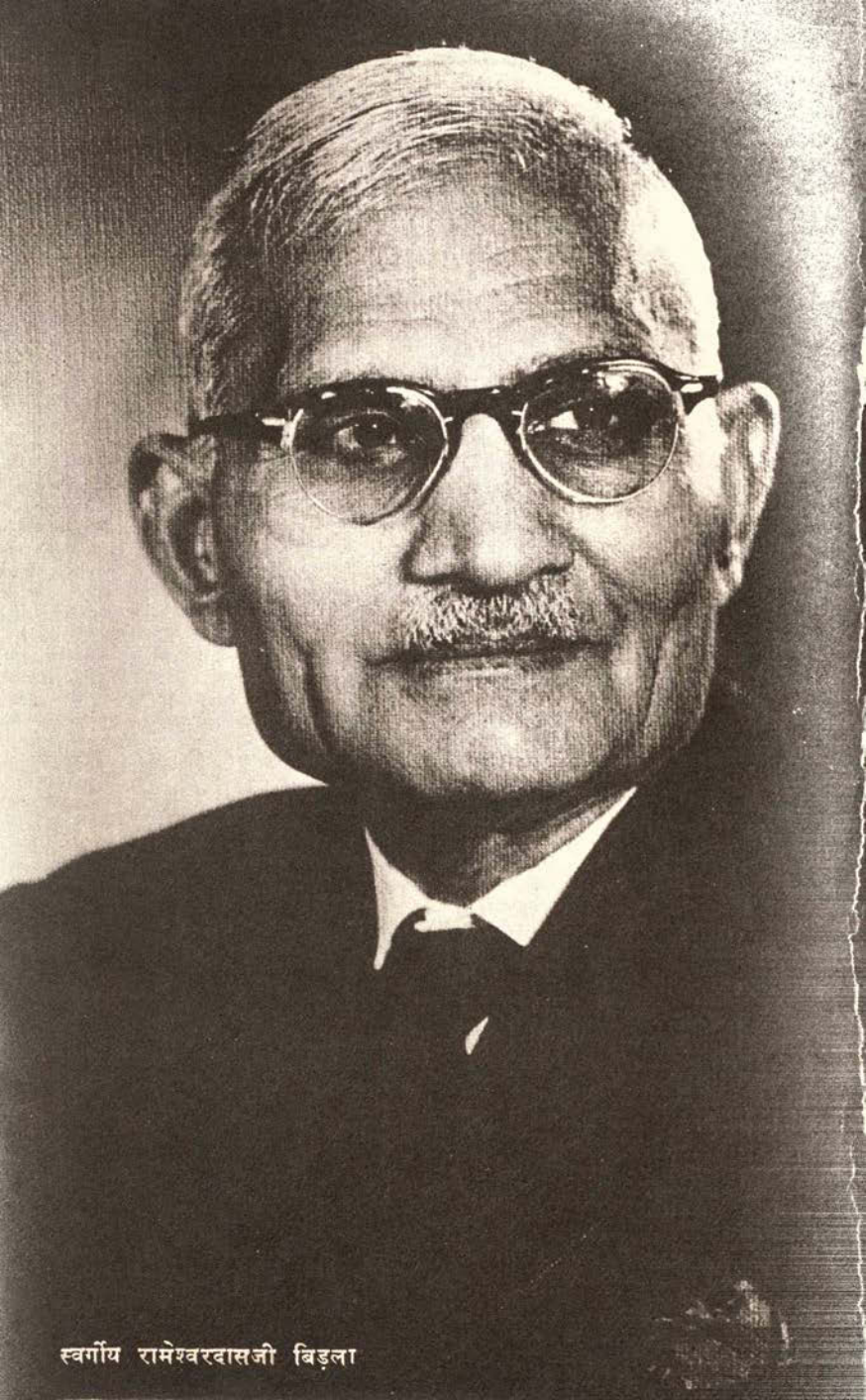

स्वर्गीय रामेश्वरदासजी बिड़ला

समारोह में : श्रेयांसप्रसाद जैन, अध्यक्ष, रामेश्वरदास बिड़ला स्मारक कोष, जयसुखलाल हाथी, पंजाब के राज्यपाल तथा मुख्य अतिथि तथा व्याख्याता दादा धर्माधिकारी.

मेरे बारे में बहुत कुछ कहा गया है। निवेदन इतना ही है कि उन सबको आप यथार्थ नहीं मानें। एक बात अपने परिचय में मैं कह देना चाहता हूं कि मैं कोई विचार रखता नहीं हूं, विचार करता हूं। विचार रखने में और विचार करने में बहुत बड़ा अंतर है। जो विचार रखा जाता है उसमें से प्रवाह बंद हो जाता है। उसमें सजीवता नहीं रहती है। वह संगठित हो जाता है और जम जाता है। जमे हुए विचार को अक्सर लोग प्रचारिक कहते हैं।

मुझे आप सबसे निवेदन यह करना है कि आप मेरे साथ विचार कीजिये। विचार को कोई विशेषण नहीं दीजिये।

विचार न गांधी का है, न मार्क्स का है, न कृष्ण का है, न बुद्ध का है और न महावीर का। विचार, विचार है। वह निरुपाधिक होना चाहिये। उसके पीछे कोई विशेषण नहीं होना चाहिये।

मैंने इसीलिये आज अपने भाषण के लिये विषय सुझाया था 'सम्यग् दर्शन'। सम्यग् दर्शन के तीन अर्थ हैं, एक तो वह उचित होना चाहिये और दूसरा असंदिग्ध होना चाहिये और तीसरा समग्र होना चाहिये। ये सम्यग् के लक्षण हैं। और दर्शन का अर्थ आज तक philosophy से किया गया है। philosophy या तत्वज्ञान असल में दर्शन नहीं है।

अंधी गली का दर्द

वस्तु का हमारे चित्त पर जो प्रभाव पड़ता है, जो प्रतिक्रिया होती है, उससे तत्वज्ञान बनता है। तज्ज्ञान और तत्वज्ञान में अंतर है। ये दो अलग चीजें हैं। तज्ज्ञान वस्तु को देखता है, perception जिसे कहते हैं। वह दर्शन है। लेकिन आजकल हम दर्शन का अनुवाद philosophy से करते हैं। यह जो philosophy है, सब जगह अलग-अलग है।

It is a maze of blind alleys and dead-end streets leading from nowhere to nothing.

यह एक ऐसी भूल-भूलैया है जिसमें अंधी गलियां हैं और ऐसे रास्ते हैं जो कहीं नहीं ले जाते। नतीजा यह है कि आज मनुष्य खो गया है। He is stranded on the road to nowhere. उसे पता नहीं है कि कहां जाना है।

दर्शन में से आत्मा खो गयी है, धर्म में से ईश्वर खो गया है और मनोविज्ञान में से मन खो गया है। इसीलिये अब नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। लोगों को विचार

देने की आवश्यकता नहीं है। विचार करने के लिये उद्युत कराने की आवश्यकता है। मैं जीवन के कुछ क्षेत्रों में सम्यग् दर्शन का विनियोग आप लोगों के सामने रखूंगा।

मैं ६० साल से ज्यादा समय से भाषण करता आया हूं। अब मैं भाषण नहीं करता हूं, बात करता हूं। और बात कभी खत्म नहीं होती। इसलिये जब यह सोचता हूं कि अब इसे बंद कर देना चाहिये, तब बंद कर देता हूं। बात खत्म नहीं होनी चाहिये। भाषण अलग चीज है और बात अलग चीज है। बात मनुष्य से होती है। एक मनुष्य हो, दस हों, पचास हों। आज मनुष्य खो गया है। संख्या में खो गया है।

उधार की आंख

एक दफा रोटरी की एक सभा में गया था। उन्होंने अपना प्रतिवृत्त (रिपोर्ट) पढ़ा। उसमें लिखा था कि औसत उपस्थिति ८१.५० (साढ़े इक्यासी) सदस्य थी। अब मैं हैरान था कि यह आधा सदस्य कैसे आया? यह कौन होगा? औसत एक mathematical fiction है। हिसाब में मनुष्य केवल अंक बन जाता है।

एक दुर्घटना हो गयी। १०० आदमी उसमें मारे गये। मेरे लिये सिर्फ आंकड़े हैं, अंक हैं। इन १०० में अगर मेरा कोई स्वजन है, कोई संबंधी है, बेटा है, भाई है, दामाद है, पोता है तो मेरे लिये वही एक १०० फीसदी हो जाता है। वही whole number है, integer, पूर्णांक है। आज हम किस स्थिति में अपने आपको पाते हैं। हमारी आंखें अब साबित नहीं रही हैं। उधारु आंख से हम देखते हैं।

बर्नार्ड शो ने कहा था कि मुझे चश्मा नहीं लगता था तो डाक्टर ने लिखकर दिया कि तुम्हारी आंख सामान्य है, स्वस्थ है। यदि मेरी आंख सामान्य है तो मेरी उम्र के सारे

लोग, जो चश्मा लगाते हैं, उनकी आंख क्या असामान्य है, अस्वस्थ है? डाक्टर ने कहा यह वैज्ञानिक सामान्य है। वैज्ञानिक स्वस्थ आंख फीसदी दो आदमियों को होती है। तो मित्रो, जब हमको जीवन की तरफ देखना हो तो अपनी साबित आंख से देखें और जीवन की समग्रता को देखें।

रूसो ने कहा था कि Man is born free but everywhere he is in fetters. मैं उसका अनुवाद, paraphrase दूसरी भाषा में करूंगा। Man is born whole, but every where he is in fragments. मनुष्य समूचा पैदा हुआ है, मगर सब जगह वह बिखरा हुआ पाया जाता है।

समग्रता ही जीवन है

मनुष्य खंडित है। अखंड मानव कहीं है ही नहीं। बड़े मजे का वर्णन एक शिक्षा शास्त्री ने किया। उसने कहा कि मैं एक बार inspection के लिए गया था। निरीक्षण, मुआयना करने गया था। I saw a fragment of a teacher, teaching a fragments of a subject to a fragment of a pupil in a fragment of time. और उसका नाम बहुत सुंदर रख दिया है। यह विद्वानों का एक तरीका है। नाम ऐसा रख देते हैं जो सुनने में बड़ा मधुर लगता है। उसका नाम है, विशिष्टीकरण।

एक मास्टर साहब ने लड़कों को चार आदमियों का किस्सा सुनाया था। उन्होंने हाथी देखा और किसी ने कहा मूसल की तरह है, किसी ने कहा रस्सी की तरह है और किसी ने कहा कि वह खंभे की तरह है। तो मास्टर साहब ने पूछा, वे कौन थे। अब परंपरागत किस्सा जिन लोगों ने सुना था उन लड़कों ने कह दिया कि वे अंधे थे। एक लड़का कुछ होशियार था। वह खड़ा हो गया और उसने पूछा कि मैं दूं इसका जवाब?

लड़के ने कहा, "सब specialists–विशेषज्ञ–थे। पूरा हाथी वे कभी देखते ही नहीं थे।"

तो, मैंने कहा ना आपसे कि इसमें 'wholism' समग्रता चाहिए। आजकल एक शब्द निकल गया है 'wholism' समग्रता। इसमें से 'डब्ल्यू' को हटाकर उसके बदले 'अपॉस-ट्रॉफी' रखा है। समग्रता होनी चाहिये। जीवन का खंड दर्शन नहीं, अखंड दर्शन। संपूर्ण जीवन की असंदिग्धता। इसके विषय में शक नहीं, संदेह नहीं। प्रश्न हो सकता है। यह right perspective सम्यग् संदर्श या परिप्रेक्ष्य है।

टेनीसन ने बड़े मजे की बात कही थी कि There is more truth in honest question than in all the religions of the world put together तो यह जिज्ञासा है, honest question है, परिप्रश्न है। परिप्रश्न अलग चीज है। संशय, संदेह बिलकुल अलग चीज हैं। इसका अर्थ Scepticism नहीं है। जैनियों में बड़ा सुंदर शब्द है सियादवाद, अनेकांतवाद। आग्रह नहीं है बुद्धि में।

संशय नहीं है, संदेह नहीं है। तो असंशय, निःसंदिग्धता और समग्रता पूरे जीवन का दर्शन है। लेकिन हम कहते हैं ना कि We are all short-sighted हम सब अल्प दृष्टि हैं। किसी वस्तु के सारे पहलू हम देख नहीं सकते हैं। एकाध दो पहलू ही देख पाते हैं। लेकिन हम तो ऐसे हो गये हैं कि सिर्फ अल्प दृष्टि ही नहीं है, squint eyed भी हैं। हमारी दृष्टि तिरछी है, टेढ़ी है, टेढ़ी-मेढ़ी है। सीधी भी नहीं है और जो Specialist हैं, उनमें अंधेरिया लगी हुई है।

मैं इस विषय को अधिक नहीं बढ़ाऊंगा। थोड़े में आपसे यह कहना चाहता हूं कि जीवन की व्याख्या न कीजिये। जीवन का कोई लक्षण नहीं है। वह अनंत है। व्याख्या क्या

करती है, विषय को सीमित कर देती है, इसको परिमित कर देती है। जीवन व्यापक है, केवल विशाल नहीं है, व्यापक है। इस जीवन को हम सीमित नहीं करें। जीवन सम्पन्न कैसे होता है? वह सम्पन्न होता है मनुष्य-संबंधों में। संबंध ही जीवन है, जहां संबंध नहीं है, वहां जीवन नहीं है।

परस्पराभिमुख विविधताएं

अब आजकल मनुष्य का संबंध कैसा है? संबंध के विषय में एक बात कह दूं वह निरपेक्ष, निरुपाधिक होना चाहिये। निरुपाधिक से मतलब कि संबंध के लिए कोई कारण नहीं चाहिए। किसी कारण की आवश्यकता नहीं है, कोई अपेक्षा नहीं है। वह निरपेक्ष है। यह जीवन का संबंध कहलाता है। ऐसा संबंध आज मनुष्यों में रह नहीं गया है। मेरी अपनी यह धारणा है कि भारतवर्ष भगवान ने इसलिये बनाया है कि यहां विविधताएं परस्पराभिमुख हों। एक-दूसरे की तरफ मुखातिब हों। इन सारी विविधताओं के मुंह एक-दूसरे की तरफ हों। एक-दूसरे की तरफ पीठ न हो; जैसा हमारे देश में हो रहा है।

सारी दुनिया के धर्म हमारे देश में हैं। फिर भी मेरे सामने एक समस्या हमेशा रही है कि इनमें झगड़े क्यों होते हैं? तनाव और तनाजे क्यों होते हैं। संघर्ष क्यों होते हैं? धर्म अगर मनुष्य को मनुष्य से, और मनुष्य को ईश्वर से मिलाने के लिये है, तो फिर सारे धर्मों में सख्य क्यों नहीं है?

कामाकोठी के शंकराचार्य जी ने श्री चिदंबरम् सुब्रह्मण्यमजी को बुलाकर कहा कि यह प्रधान समस्या हमारे देश की है। क्या धार्मिक कष्ट भी समस्या हो सकती है? लेकिन धर्म जब संगठित हो जाता है तो उसमें उन्माद आ जाता है। धर्म का नशा किसी मादक वस्तु से अधिक मादक होता है।

जब वह संगठित हो जाता है, तब उसमें से ईश्वर गायब हो जाता है और शैतान उसके सिंहासन पर आकर बैठ जाता है। सिंहासन पर जहां शैतान आरूढ़ होता है, वहीं संगठित धर्म होता है। इसलिये आज जो समस्याएं हमारे देश में हैं, वे समस्याएं धार्मिक नहीं हैं। यह समस्या है सांप्रदायिक, communal क्योंकि धर्म की communities बन गयी हैं। आइन्दा उपासनाएं रहेंगी—व्यक्तिगत और सामुदायिक भी। लेकिन वे 'कम्युनिटीज' के रूप में संगठित नहीं होंगी।

ईश्वरविहीन धर्म

आज अनेक धार्मिक समाज हैं। इनके दो लक्षण हैं। एक लक्षण तो यह है कि हिंदू झूठ बोलने पर भी हिंदू रहता है, मुसलमान झूठ बोलने पर भी मुसलमान ही रहता है और ईसाई झूठ बोलने पर भी ईसाई रहता है। तो इसका परिणाम क्या निकला? निष्कर्ष यह निकला कि जिसे आप धर्म कहते हैं, उसमें से ईश्वर को, सत्य को, ईमान को, नैतिकता को हटा दीजिये और फिर जो बच जाता है, उसका नाम धर्म है और वह समाज है।

आज धर्म-परिवर्तन का अर्थ है समाज-परिवर्तन और सारे-के-सारे प्रश्न परिणत हो जाते हैं संख्या के प्रश्न में। proselytisation होता है, धर्म परिवर्तन कराया जाता है, धर्म परिवर्तन किया जाता है। इसमें संप्रदायवाद है communalism denominationalism है। तो क्या उपाय है? इस दिशा में कुछ प्रयत्न हुए। हमारे देश में Theosophical society ने एक महान् प्रयत्न किया। दूसरा अनूठा प्रयोग श्रीरामकृष्ण परमहंस देव ने किया। रामकृष्ण परमहंस देव ने तो सारे धर्मों का अनुष्ठान अपने जीवन में किया।

इनके बाद गांधी आया। उसकी सामूहिक प्रार्थना में

ईश्वर, अल्लाह एक ही रूप में आया। सर्व धर्मों की प्रार्थना आयी। सर्व धर्म समन्वय आया। उसके बाद सर्व धर्म समभाव आया। आगे चल कर विनोबा ने सारे धर्मों के मुख्य ग्रंथों का, संप्रदायों का अध्ययन निष्ठापूर्वक किया, भक्तिपूर्वक किया और उनके सार को निकालकर रख दिया।

एक ही धर्म चाहिये

लेकिन आपने देखा कि धार्मिक कलह और धार्मिक संघर्ष बंद नहीं हो सके। तो मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं और मेरे सारे नतीजे, जैसा कि मैं शुरू में कह चुका हूं, tentative हैं, अस्थायी होते हैं, इनमें विकास हो सकता है। Last word होता ही नहीं है विचार में। और होना भी नहीं चाहिये। Organised religion संगठित धर्म नाम की चीज नहीं रहनी चाहिये। Organised religion is denomination जो संगठित धर्म होता है, इसी का नाम संप्रदाय है। धर्म समाज बनता है। इन समाजों की दीवारें होती हैं। इन किलों में ईश्वर नहीं रह सकता।

अब सर्व धर्म समन्वय नहीं, सर्व धर्म समभाव नहीं, एक ही धर्म होगा। बहुवचन में धर्म नहीं, अनेक वचन में। सारे धर्म अगर परस्पराभिमुख होंगे तो विनोबा जैसा कहते हैं, कुरान को भी मान सकते हैं, बाईबल को भी मान सकते हैं, अवेस्ता को भी मान सकते हैं। आज तो न हिन्दू, न मुसलमान कोई दूसरे के धर्म को अपना मानने को तैयार नहीं है।

ऐसा निरुपाधिक मानव, केवल मानव, integrated मानव है। यह संवादी मानव है। संवादी मानव को दो विभूतियां हैं हमारे पुराने साहित्य में। एक हैं श्रीकृष्ण, जिनकी कोई मर्यादा ही नहीं। Inhibition नहीं, कोई निर्बंध नहीं। कोई विधि-विधान नहीं। कोई विधि निषेध नहीं। और

दूसरा है शिव। शिव श्मशान में जीवन के बीज बोते हैं। उनका शिव संहार का है। फिर भी वे शिव हैं, मंगलमय हैं। उसे अर्ध नारीश्वर कहते हैं और उनकी तो मूर्ति बनती है, उसमें आधे शरीर में पार्वती की बनाते हैं और आधे में शिव को बनाते हैं। यह caricature व्यंग्यचित्र है।

यह उसकी असली मूर्ति नहीं है, वास्तविक प्रतिमा नहीं है। प्रतिमा क्या होनी चाहिये? पार्वती में शिव हों, और शिव में पार्वती हों। दोनों एक-दूसरे में ओतप्रोत हैं। यह संवादी मनुष्य है। यह integrated मनुष्य है। ऐसे संवादी मनुष्यों का संवादी धर्म होगा।

भारतीय मानसिकता

निवेदिता ने एक बार लक्षण बताया, भारतीयता का। कृष्णमूर्ति ने मुझसे एक सवाल किया था, Sir, is there an Indian Mind? क्या कोई भारतीय मानसिकता भी है? तबसे मैं खोज करने लगा तो निवेदिता में जवाब मिला। उसने कहा कि तीन चीजों हैं जिनमें भारतीयों की विशेषता है। एक तो synthesis सामंजस्य है, समन्वय है। दूसरे harmony है, संवादित्वा और तीसरी co-ordination संगतीकरण। जो असंगत है, उसमें भी संगति खोज लेना, इसे मैं शुभ दर्शन कहता हूं। मित्रो, यह वस्तुनिष्ठ नहीं है, जीवन-परक है।

मैंने दो बातें आपसे कहीं। एक तो है, वस्तुनिष्ठ दर्शन और दूसरा जीवननिष्ठ दर्शन है। जीवननिष्ठ दर्शन अवस्तु में वस्तु को देखना चाहता है। जो वस्तु आज जैसी है वैसी नहीं, जैसी होनी चाहिये वैसी। यह स्वप्नदृष्टा होता है और स्वप्न एक बड़ी दिव्य वस्तु है। जीवन में अगर स्वप्न नहीं हों तो मनुष्य जीवन का सामना नहीं कर सकता है। लेकिन स्वप्न

दिव्य स्वप्न हो। जीवन का स्वप्न हो। अब हमारे स्वप्न का मनुष्य निरुपाधिक होगा। वह विशुद्ध, निरुपाधिक मानव होगा। यह क्षितिज ही उसकी चहारदिवारी होगी।

आज भी यह हो रहा है। यहां अकाल होता है तो दुनिया के दूसरे कोने से सहायता आती है। कहीं भूकंप हो जाता है तो सारी दुनिया से सहायता आती है। विज्ञान ने कुछ गलत काम किये हैं, लेकिन एक बहुत बड़ा भव्य काम किया है, मनुष्य को मनुष्य के सामने, निकट लाकर रख दिया है। जब दो मनुष्य आमने-सामने आ जाते हैं तो दो ही विकल्प हो सकते हैं। एक तो लड़ेंगे या गले मिलेंगे। क्योंकि लड़ने के लिये भी परिचय होना चाहिये। जहां परिचय नहीं हो, वहां लड़ाई भी नहीं हो सकती है। निकटता के बिना संघर्ष नहीं हो सकता है। तो अब मनुष्य, मनुष्य के सामने आकर खड़ा हो गया है। सवाल इतना ही है कि अब कुश्ती होगी कि आलिंगन होगा। कुश्ती नहीं, आलिंगन होगा और वह भारत वर्ष में शुरू होगा। यह भारत की नियति है। यह भारत की दिव्य भूमिका है।

एक भयंकर सिद्धांत

दूसरा क्षेत्र है जीविका का। जीवन, उपजीवन और संजीवन। तीन क्षेत्रों का विचार थोड़े में आप लोगों के सामने रखूंगा और अपनी बात को बंद कर दूंगा। उपजीवन का अर्थ है living या livelihood. आजीविका में हमने एक भयानक सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। वह भयानक सिद्धान्त यह है कि काम का संबंध उपभोग से होगा। इतना भयानक सिद्धान्त दुनिया में कभी आया ही नहीं था। अपूर्व है, लेकिन सबसे भयंकर है। जितना काम उतना उपभोग!

असल में किसी क्रांतिकारी ने इसको नहीं माना है।

लेकिन अबतक दुनिया में यह चल रहा है। आप अपने घर में कभी ऐसा करेंगे ? अगर मैं ऐसा कहूं कि जो जितना काम करता है, उतना खाये तो यह कभी होगा ही नहीं।

यह जेल में होता था कि हरेक को ६-६ रोटियां मिलती थीं। कम खाओ तब भी पेशी, ज्यादा मांगो तब भी पेशी। यह तो standardisation नहीं, regimentation है। जो यह कहता है कि पसीने की रोटी खाता हूं, किसी जमाने में उसका कहना उपयुक्त रहा होगा। लेकिन आज निरर्थक है। श्रम का संबंध उत्पादन से है, उपभोग से नहीं। श्रम से उत्पादन होगा। जितनी आवश्यकता होगी, उतना उपभोग। लेकिन प्रतिमूल्य का सिद्धान्त आसुरी सिद्धान्त है। हमने उसे अपने जीवन में स्वीकार कर लिया है।

क्या काम का भी कभी दाम हो सकता है ? आप ही सोचें। मैं समझना चाहता हूं कि क्या किसी काम का कोई दाम हो सकता है ? हर चीज पर, हमारे धर्म पर, हमारी कला पर, हमारे साहित्य पर, हमारी विद्या पर एक pricetag, कीमत की चिप्पी है। कीमत लगी हुई है। इससे अनर्थ होगा। क्या काम का भी कभी दाम हो सकता है ?

जान की कीमत

एक प्रसंग मुझे याद आता है। नर्मदाजी में तैरने गया था। छोटा था, डूबने लगा। एक मल्लाह था नाववाला। उसने मुझे बचा लिया। लेकिन तैरते वक्त धारा कुछ जोरों की थी। प्रवाह का वेग अधिक था। मैं डूबने लगा तो धोती खुल गयी। अब दूसरी जो धोती थी, वह पहन कर घर चला गया। पिताजी से डरता था, इसलिए बतलाया नहीं किसी को भी।

लेकिन मेरे दुर्भाग्य से एक दिन वह मल्लाह मेरी धोती लेकर आया। पिताजी ने पूछा कि यह धोती तुझे कैसे मिली तो उसने बताया कि ऐसा-ऐसा हुआ। तब मेरे पिताजी को पता चला। उन्होंने उसको ५० रुपये दिये इनाम के बतौर। तो उसने जो सवाल पूछा, वह हम जो पढ़े-लिखे आदमी हैं उनके दिमाग में कभी आयेगा ही नहीं।

कहा, "हुजूर, यह ५० रुपये किसकी जान की कीमत है? मेरी जान की कीमत है या आपके बेटे की जान की?

"आप मुझे बताइये। क्या इसका भी कोई प्रतिमूल्य हो सकता है? बदला एक ही हो सकता है कि किसी दिन मैं डूबता होऊं और आप मुझे बचा लें। तो यह आप चाहेंगे नहीं।"

यह प्रतिमूल्य का अर्थशास्त्र अनर्थशास्त्र है। और यह हमारे देश में और सारी दुनिया में चल रहा है। इसलिये, the whole world is topsy-turvy, औंधी दुनिया में हम रह रहे हैं। Bertrand Russel ने एक बार कहा था कि It seems to me that the Devil made this world when God was not looking.

ईश्वर जब देख नहीं रहा था तब दुनिया शैतान ने बना डाली। आप देखिये यह दुनिया औंधी है।

मुझे बताइये, पैसा कभी कोई चीज बना सका है और पैसा कभी किसी चीज की जगह ले सका है? राजस्थान के मरुस्थल में आप पानी के लिये अगर तड़पते रहें, हजार रुपये अगर आपकी जेब में हों, तब भी पानी की जगह रुपया नहीं ले सकता और फिर भी आज रुपया सबसे ऊपर है।

इसका मतलब यह है कि हमारे दिमाग सही नहीं हैं। असम्यक हैं। गलत वस्तु को गलत जगह रखते हैं। रुपया

खाया नहीं जा सकता, पिया नहीं जा सकता, पहना नहीं जा सकता, वह वस्तु की जगह नहीं ले सकता। वह चीज खरीद सकता है।

इसलिये मित्रो, हमारे मंदिर दूकान हैं, हमारे घर दूकान हैं, हमारे विश्वविद्यालय, विद्यापीठ दूकानें हैं। सारे का सारा market oriented (पण्य संस्कृति) है। आज मनुष्य की संस्कृति बाजारू है। जो चीज बनाता है, वह मोहताज है। अन्न उपजानेवाला मोहताज है। मेरा पोता एक जूता लाया, १०० रुपये उसकी कीमत है। जिसने बनाया वह पहन नहीं सकता। बनानेवाला कहीं है ही नहीं, जो असल में विधाता है। सत्ता, संपत्ति, शस्त्र का बोलबाला है। लेकिन औजार ने इन सबको बनाया है, शस्त्र को बनाया है, संपत्ति को बनाया है और सत्ता को खड़ा किया है।

Goldsmith ने कहा था कि एक सांस में ये सब बनी, एक सांस में यह बिगड़ सकती है। But a bold peasantry, their country's pride, once destroyed can never be supplied. वह किसान अगर एक बार खत्म हो जाये तो फिर उसकी जगह कोई ले नहीं सकता है।

औजार की सत्ता

तो मित्रो, औजार की सत्ता होगी, सत्ता और संपत्ति और शस्त्र की जगह। आप हिंसा, अहिंसा वगैरह की बहसें छोड़ दीजिये। यह व्यर्थ के वाद हैं। गांधी, बुद्ध, ईसा, महावीर इन सबकी अहिंसा इनके साथ जाने दीजिये। आप मेरे साथ सोचिये कि दुनिया में हथियार की सत्ता चाहिये कि औजार की सत्ता चाहिये। औजार जीवन देता है, हथियार जीवन छीनता है। और यह औजार ही हथियार को बनाता है। सत्ता औजार की होनी चाहिये।

इसमें कौन-सी हिंसा, अहिंसा की बात है? अहिंसा को आप अगर सिद्धान्त बनायेंगे तो अहिंसा के लिये युद्ध होगा। जैसा आज ईश्वर के नाम पर होता है। मेरे जीवन में मैंने यह देखा है। हमारी सभाओं में अगर कोई गांधी या अहिंसा के खिलाफ बोलने लगता था तो हम उसकी जीभ निकाल लेने के लिये तैयार हो जाते थे। Bertrand Russel ने तो एक किताब ही लिख दी है इस पर कि दो राष्ट्रों में युद्ध ही हो गया था अहिंसा के लिये। सिद्धान्त मत बनाइये। जीवन में जो मूल्य सिद्धान्त बन जाता है, वह जीवन में से निकल जाता है। उसका विनियोग जीवन में नहीं होता।

आज जिस युग में हम रह रहे हैं, यह clamorous commercialism दूकानदारी, आक्रोशकारी व्यापार का युग है। सब चीजों का व्यापार–ईश्वर का व्यापार, इंसान का व्यापार–सबका व्यापार हो रहा है। और खेल का भी व्यापार। जीवन, जीविका का व्यापार।

अब मैं अंतिम चीज पर आ रहा हूं– recreation– संजीवन पर।

खेल–एक आध्यात्मिक वस्तु

खेल सबसे बड़ी आध्यात्मिक वस्तु है जीवन में। खेल से अधिक पारमार्थिक दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। एक ही जगह ऐसी है मनुष्य के जीवन में, खेल, जहां वह प्रतिपक्षी को भी खोजता है।

जेल में हमारे साथी ब्रिज खेलने बैठते थे। मुझे तो खेलना आता नहीं था। वे कहते थे, "आओ भाई तुम खेलो मत। तुम हमारे साथ बैठो।"

मैं पूछता था, "तो क्या करूं?"

"हमारे खिलाफ खेलो।"

विरोध में खेलनेवाला भी खेल में participate करता है, शामिल होता है। वह playmate होता है। असल में वही डिमोक्रेसी है।

लोकतंत्र, यह एक ही तंत्र दुनिया में ऐसा है जिसमें विरोध भी उसका हिस्सा होता है। तंत्र का हिस्सा। यह खेल है। आज जो रहा है, यह खेल नहीं है। इसमें प्रतिस्पर्धा है, इसमें होड़ है, यह जो हो रहा है, यह खेल नहीं है। खेल तब होगा जब उसमें से होड़ समाप्त हो जायेगी। दो टीमें हैं लेकिन ये दोनों मिलकर एक खेल बनती हैं। दोनों को मिलाकर खेल होता है। इसीलिये खेल में जो हार जाता है, उसकी भी जय बोली जाती है – Three cheers! अब हम लोगों ने इसका अर्थ यह कर दिया three cheers हार की निशानी है। हिप्पीप हुर्ये हो गयी। ऐसी बात नहीं है। जो हारता है उसकी जय बोलते हैं। उसका उत्साहवर्धन करते हैं।

हार-जीत यह हिसाब का है। हार-जीत का हिसाब सत्ता का, द्रव्य का है। हार-जीत खेल के मैदान की चीज नहीं है। यहां खिलाड़ी की तबियत है।

इस जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी अगर हमारा दर्शन सम्यक होगा, हमारा vision, सिर्फ दर्शन ही नहीं perception होगा। विजन, जिसे हम दिव्य दृष्टि का क्रांत-दर्शन अथवा पारदर्शिता कहेंगे, जो सपना हम देख रहे हैं, वह सपना भी उतना दिव्य भव्य होना चाहिये। आज जो सपना था, कल वह सत्य हो गया। सच्चाई बन गया।

हमारे देश में अनेक लोगों ने सपना देखा कि एक दिन आयेगा जब इस जमीन पर कोई राजा न होगा। मेरे दादा

से कोई कहता तो वह कभी नहीं मानते। आज एक दिन ऐसा आ गया, जब इस जमीन पर कोई राजा नहीं है, जमींदार नहीं है। सपना यथार्थ होता चला जाता है और जब सपना यथार्थ होता है तब इतिहास कृतार्थ होता है। अब तक राजा ने इतिहास बनाया, धर्म प्रवर्तकों ने, वीरपुरुषों ने, सेनापतियों ने इतिहास बनाया। अब वह दिन आ रहा है, round the corner है, सामने है वह दिन।

सपनों का भव्य संसार

आनेवाला है वह दिन, जिस दिन औजार जिसके हाथ में होगा, वह इतिहास का विधाता होगा। यह सामान्य मनुष्य इतिहास का विधाता होगा। मानवीय इतिहास का आरंभ होगा। मार्क्स ने कहा था न कि अभी तो सब pre-history है।

मित्रो, मैंने आपके सामने बैठकर, आपके साथ, अगर आप शामिल हो सकें हों तो, कुछ स्वप्न रंजन किया है। वाई. बी. यीट्स (Yeats) गाता था :

Hold on fast to your dreams, for when dreams go, life becomes a barren field which is frozen by ice and snow. That is why (इसलिये) when dreams die, life itself becomes a broken-winged bird which cannot fly. I am poor, I have only my dreams. I spread them under your feet, tread softly, because you are treading on my dreams.

मेरे सपनों को कुचलिये नहीं। इन पर आराम से, धीरे-धीरे, हल्के-हल्के कदम रखिये। मनुष्य का जीवन जितना उज्ज्वल होता है, उसका दर्शन उतना ही उन्नत होता है। जमीन पर जो खड़ा है, उसका क्षितिज सीमित है। sky-scraper

पर खड़ा होगा तो और विशाल हो जायेगा। लेकिन हिमालय की चोटी पर खड़ा होगा तो क्षितिज का अंत ही नहीं होगा। Thus alone can we attain to those turrets where the eye sees the world as a vast-field and one boundless reach of the sky.

मित्रो, मैंने जिस सम्यक दर्शन की व्याख्या आप लोगों के सामने की है, वह परंपरागत सम्यक दर्शन से अलग है। जीवन में विकास होता है, दर्शन में भी विकास होता है। समय की मर्यादा में भी मैं अपनी बात यहां बंद करूंगा। इससे अधिक नहीं कहूंगा। 'यावत् तैलम्, तावत् आख्यानम्।' यह नियम है।

आप सबको नमस्कार है, धन्यवाद!

प्रकाशक

रामेश्वरदासजी बिड़ला स्मारक कोष
मेडिकल रिसर्च सेंटर, बंबई अस्पताल एवेन्यू
बंबई-४०० ०२० (भारत)

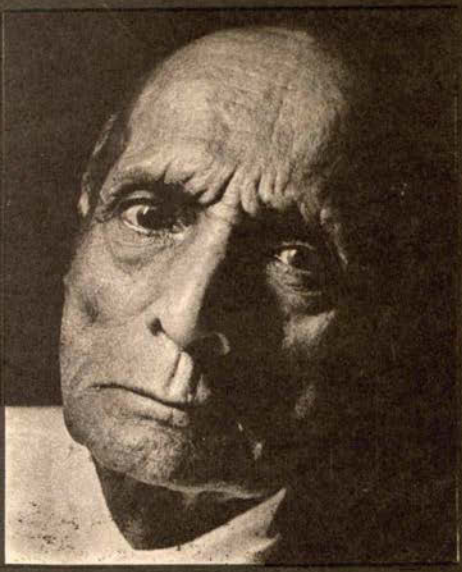

८२ वर्षीय दादा धर्माधिकारी गांधी–युग की उस श्रृंखला की अंतिम कड़ियों में एक हैं, जिन्होंने गांधी के जाने के बाद भी, उनके अभिनव क्रांति-विचार को जीवित रखा है। गांधी-विचार के एक मान्य व्याख्याता के रूप में प्रतिष्ठित दादा धर्माधिकारी की विशेषता यह है कि वे लोक-जीवन में प्रारंभ से अबतक सक्रिय रहे हैं।

क्रांति की बुनियादी परिकल्पना के प्रति लोगों का ध्यान खींचने और उन्हें उस ओर उन्मुख करने की दादा धर्माधिकारी की सदा कोशिश रही है। 'सम्यग्–दर्शन' नाम के इस प्रवचन में भी उन्होंने आज के मानवीय संबंधों का विश्लेषण करते हुए, भविष्य का खाका खींचा है।

रामेश्वरदासजी बिड़ला स्मारक कोष द्वारा प्रकाशित
न्यू ठक्कर्स फाइन आर्ट्स प्रेस प्रा. लि. द्वारा मुद्रित